National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 79-83
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.एम.अब्दुल रजाक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
क्रिस्तु जयंती विश्वविद्यालय,
के- नारायणपुर, कोतनूर,
बेंगलूरु - 560077

Correspondence:
डॉ.एम.अब्दुल रजाक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
क्रिस्तु जयंती विश्वविद्यालय,
के- नारायणपुर, कोतनूर,
बेंगलूरु - 560077

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन का आलोचनात्मक संदर्भ

डॉ.एम.अब्दुल रजाक

शोधसार :

निर्मला पुतुल समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन की सशक्त कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में आदिवासी समाज का यथार्थ, संघर्ष, श्रमशीलता, प्रकृति से गहरा रिश्ता और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रभावी चित्रण मिलता है। वे स्वयं आदिवासी पृष्ठभूमि से आती हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में अनुभव की प्रामाणिकता और संवेदनात्मक गहराई स्वाभाविक रूप से दिखाई देती है। निर्मला पुतुल की कविताएँ केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि सामाजिक अन्याय, शोषण, विस्थापन और पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा आदिवासी जीवन पर किए जा रहे आघात का तीखा प्रतिरोध भी दर्ज करती हैं। उनकी कविताओं में आदिवासी स्त्रियों की श्रमशीलता, पारिवारिक दायित्व, सांस्कृतिक चेतना और संघर्षशीलता का गहन चित्रण है। वे आदिवासी स्त्री को केवल पीड़ित रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उसके विद्रोही तेवर और अस्मिता की खोज को भी स्वर देती हैं। 'दूसरी औरत','अकेली औरत' तथा 'ओ पृथ्वी माँ' जैसी कविताएँ इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत शोध-निबंध में निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन का बहुआयामी चित्रण आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचित किया गया है, जिसमें प्रकृति, संस्कृति, स्त्री-संघर्ष, विस्थापन और अस्मिता जैसे आयाम प्रमुख रूप से उभरते हैं।

बीज शब्द :

आदिवासी साहित्य, स्त्री अस्मिता, सांस्कृतिक प्रतिरोध, विस्थापन, हाशिया का समाज, सामाजिक न्याय, कविता में संघर्ष, आदिवासी स्त्री जीवन

मूल आलेख :

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण लंबे समय से होता रहा है, किंतु यह प्रायः बाहरी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया। ऐसे में जब आदिवासी समाज से आने वाली स्त्री कवयित्री स्वयं अपनी संस्कृति, जीवन और संघर्ष को स्वर देती है, तो उसकी प्रामाणिकता और प्रभाव कहीं अधिक गहरा हो जाता है। निर्मला पुतुल ऐसी ही कवयित्री हैं जिनकी कविताओं में आदिवासी अस्मिता, प्रकृति से तादात्म्य, स्त्री-संघर्ष और सामाजिक शोषण के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध दिखाई देता है। उनका जन्म झारखंड के दुमका जिले के दूधनी कुरुवा गाँव में एक संथाल आदिवासी परिवार में हुआ। उनकी कविताएँ आदिवासी जीवन के बहुआयामी पक्षों को उजागर करती हैं- जिसमें संघर्ष, पीड़ा, संस्कृति, स्त्री जीवन और प्रतिरोध शामिल हैं। वे परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व के बीच आदिवासी जीवन की वास्तविक छवि सामने लाती हैं।

आदिवासी जीवन का यथार्थ

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी समाज के हाशिया, विस्थापन, गरीबी, और सांस्कृतिक दमन को उजागर करती हैं। उनकी कविता 'सबकुछ अप्रिय है उनकी नजर में' में वह लिखती हैं कि कविता

आदिवासी समाज के प्रति प्रचलित सामाजिक घृणा, उपेक्षा और दोहरे मानदंडों को उजागर करती है। यह एक आदिवासी स्त्री की दृष्टि से लिखा गया आत्मस्वर है, जो समाज की तथाकथित सभ्यता के खोखलेपन को चुनौती देता है। कवयित्री यहाँ अपने अनुभवों के माध्यम से यह दिखाती हैं कि कैसे आदिवासी जीवन को असभ्य, पिछड़ा और अछूत समझा जाता है, जबकि उसी समाज की मेहनत और संसाधनों का उपभोग किया जाता है।

"मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में
प्रिय है तो बस
मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्ज़ियाँ
घर की मुर्ग़ियाँ । "[1]

यह पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि कथित सभ्य समाज आदिवासी जीवन की उपयोगिता तो स्वीकार करता है, पर उसकी संस्कृति, भाषा, रंग और रीति-रिवाज को हीन दृष्टि से देखते हैं। निर्मला पुतुल की यह रचना आदिवासी कविता में प्रतिरोध की एक सशक्त आवाज़ है, जो न केवल सवाल उठाती है, बल्कि पाठक को आत्ममंथन के लिए विवश करती है।

स्त्री जीवन की पीड़ा

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री की पीड़ा को विशेष रूप से चित्रित करती है। कविता में 'वे' का प्रयोग स्त्रीवाचक है, जो आदिवासी स्त्रियों की स्थिति को रेखांकित करता है। यह स्त्री केवल सामाजिक रूप से नहीं, बल्कि राजनीतिक रूप से भी वंचित है। उसकी दुनिया सीमित है, लेकिन उसकी चीज़ें सत्ता के गलियारों तक पहुँचती हैं, यह विडंबना कविता का केंद्रीय स्वर है। वे लिखती हैं कि-

"वे नहीं जानतीं कि
कैसे पहुँच जाती हैं उनकी चीज़ें दिल्ली
जबकि राजमार्ग तक पहुँचने से पहले ही
दम तोड़ देतीं उनकी दुनिया की पगडंडियाँ
नहीं जानतीं कि कैसे सूख जाती हैं
उनकी दुनिया तक आते-आते नदियाँ
तस्वीरें कैसे पहुँच जातीं हैं उनकी महानगर
नहीं जानतीं वे! नहीं जानतीं!!"[2]

इस कविता में यह प्रश्न उठाया गया है कि कैसे आदिवासी समाज की चीज़ें जैसे कला, संसाधन, श्रम दिल्ली और महानगरों तक पहुँच जाती हैं, जबकि स्वयं आदिवासी व्यक्ति उस प्रक्रिया से वंचित रहता है। राजमार्ग तक पहुँचने से पहले ही दम तोड़ देतीं उनकी दुनिया की पगडंडियों तक सीमित है- यह आदिवासियों के विकास की असमानता और बुनियादी ढाँचे की विफलता को उजागर करती है।

पुतुल जी "अपने घर की तलाश में" कविता में वह स्त्री के अस्तित्व की खोज को रेखांकित करती हैं, जिसमें एक स्त्री के आत्मबोध, अस्मिता और अस्तित्व की खोज को बेहद मार्मिक और प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वे लिखती है कि-

"मैं बिखरी हूँ पूरे घर में
पर यह घर मेरा नहीं है
बरामदे पर खेलते बच्चे मेरे हैं
घर के बाहर लगी नेम-प्लेट मेरे पति की है
मैं धरती नहीं पूरी धरती होती है मेरे अंदर
पर यह नहीं होती मेरे लिए
कहीं कोई घर नहीं होता मेरा
बल्कि मैं होती हूँ स्वयं एक घर
जहाँ रहते हैं लोग निर्लिप्त
गर्भ से लेकर बिस्तर तक के बीच
कई-कई रूपों में..."[3]

उपर्युक्त कविता में उल्लेख 'घर', 'धरती', 'गर्भ', 'बिस्तर', 'नेम-प्लेट' जैसे प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जो स्त्री जीवन के विभिन्न पड़ावों और भूमिकाओं को दर्शाते हैं। यह पंक्ति स्त्री के जीवन की बहुआयामीता को रेखांकित करती है, जहाँ वह माँ, पत्नी, सेविका, प्रेमिका और गृहिणी के रूप में उपस्थित है, लेकिन स्वयं के लिए अनुपस्थित।

इसी कविता में वे लिखती है कि स्त्री के भीतर उठते उन प्रश्नों की ओर संकेत करती है जो पितृसत्तात्मक समाज में उसकी भूमिका, अधिकार और पहचान को लेकर हैं। कविता में स्त्री न केवल भटक रही है, बल्कि वह सक्रिय रूप से अपने अस्तित्व को परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। वेलिखित है कि-

"धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिए मैं
छोड़ती-हाँफती-भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर
अपनी ज़मीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ! "[4]

निर्मला पुतुल सभ्य समाज के मानसिकता की आलोचना करते हुए 'सबकुछ अप्रिय है उनकी नजर में' कविता में आदिवासी स्त्री की उस बेचैनी को दर्शाती है, जो अपने अस्तित्व और पहचान की खोज में निरंतर संघर्षरत है। वे आगे लिखती हैं कि -

"उन्हें प्रिय है

मेरी गदराई देह
मेरा मांस प्रिय है उन्हें! "[5]

यह कविता केवल स्त्री होने की पीड़ा नहीं, बल्कि आदिवासी स्त्री होने की दोहरी पीड़ा को सामने लाती है । मुख्यधारा समाज आदिवासी स्त्री की संस्कृति, भाषा, जीवनशैली को हेय दृष्टि से देखता है, लेकिन उसकी देह को आकर्षण और उपभोग का साधन मानता है। यह एक प्रकार का औपनिवेशिक दृष्टि (colonial gaze) है । जहाँ आदिवासी स्त्री को 'अन्य' के रूप में देखा जाता है, लेकिन उसकी देह को 'अपना' मान लिया जाता है ।

प्रतिरोध और चेतना

निर्मला पुतुल की कविताओं में प्रतिरोध और चेतना आपस में जुड़कर सामने आते हैं । उनका प्रतिरोध केवल नकारात्मकता नहीं है, बल्कि सकारात्मक चेतना से जुड़ा है । जिस में अन्याय को नकारना, अस्मिता की रक्षा करना, सांस्कृतिक पहचान को बचाना, स्त्रियों की शक्ति को पहचानना आदि से जुडा है। निर्मला पुतुल की कविताएँ शोषण, अन्याय और विस्थापन के विरुद्ध एक मजबूत प्रतिरोध की आवाज़ हैं। वे पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा आदिवासियों की जमीन-जंगल छिनने पर सवाल उठाती हैं । उनकी कविताओं में शोषण झेल रहे आदिवासी समाज के विद्रोह का उद्घोष मिलता है । वे लिखते है कि-

"जंगल जो हमारे थे
अब नीलाम हो रहे हैं
हमारी नदियाँ
बँध कर किसी और की प्यास बुझा रही हैं ।"[6]

निर्मला पुतुल की कविताएँ केवल पीड़ा का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि प्रतिरोध की चेतना भी जगाती हैं । वे अपने समुदाय को संघर्ष और जागरूकता का संदेश देती हैं । निर्मला जी कहती है कि अपने शोषण को पहचानो उदासीन समर्पण की राह छोड़ो संघर्ष की राह चुनो का संदेश देती है । यह स्वर आदिवासी समाज को आत्म-चेतना और आत्म-सम्मान की ओर प्रेरित करता है ।

सांस्कृतिक अस्मिता

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज और जीवनशैली को सम्मान देती हैं । वे इस बात पर बल देती हैं कि आदिवासी समाज को अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखनी चाहिए, न कि मुख्यधारा की संस्कृति में विलीन हो जाना चाहिए। उनकी कविता "नगाड़े की तरह बजते शब्द" में आदिवासी संस्कृति की ध्वनि को एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । नगाड़ा यहाँ प्रतिरोध और चेतना का प्रतीक बनता है । वे लिखती है कि-

"संथाल परगना

अब नहीं रह गया संथाल परगना!
बहुत कम बचे रह गए हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग
बाज़ार की तरफ़ भागते
सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ
उखड़ गए हैं बड़े-बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गई है इसकी पहचान
कायापलट हो रही है इसकी
तीर-धनुष-माँदल-नगाड़ा-बाँसुरी
सब बटोर लिए जा रहे हैं लोक-संग्रहालय
समय की मुर्दागाड़ी में लाद कर ।"[7]

निर्मला पुतुल की कविता 'संथाल परगना' को सांस्कृतिक अस्मिता (Cultural Identity) के दृष्टिकोण से पढ़ना सबसे अधिक सार्थक है, क्योंकि यह कविता मूलतः आदिवासी संस्कृति की मिटती हुई पहचान और उसके पुनर्स्मरण का दस्तावेज़ है । कविता में कवयित्री दिखाती हैं कि आधुनिकता, बाज़ारवाद और तथाकथित विकास की लहर ने संथाल समाज की सांस्कृतिक जड़ों को हिला दिया है । पहले जो समाज अपनी भाषा, वेशभूषा, संगीत, नृत्य और प्रकृति से जुड़ा था, अब वह "बाज़ार की तरफ़ भागता" दिखता है । यह दौड़ उन्हें उनकी मूल अस्मिता से दूर ले जा रही है । इस तरह कविता एक ऐसे समय का चित्र खींचती है जब संस्कृति जीवित नहीं, बल्कि प्रदर्शन की वस्तु बन चुकी है। आगे कवयित्री लोकसंस्कृति का संग्रहालयीकरण प्रकाश डालते हुए लिखती है कि-

"तीर-धनुष-माँदल-नगाड़ा-बाँसुरी
सब बटोर लिए जा रहे हैं लोक-संग्रहालय"[8]

यह पंक्तियाँ सांस्कृतिक अस्मिता के विनाश की प्रतीक हैं । जो वस्तुएँ संथाल जीवन के जीवंत प्रतीक थीं, वे अब केवल दिखावे की वस्तुएँ बन गई हैं । यह स्थिति बताती है कि संस्कृति को जीने के बजाय हम उसकी नकल और नुमाइश तक सीमित कर चुके हैं।

विस्थापन और विकास का छलावा

निर्मला पुतुल की कविताओं में विकास के नाम पर आदिवासी समाज के साथ हुए छल को भी उजागर किया गया है । उनकी कविताओं में बार-बार यह प्रश्न उठता है कि क्या विकास का अर्थ आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल करना है? निर्मला पुतुल की कविता "संथाल परगना" वास्तव में विस्थापन (displacement) और विकास का छलावा (illusion of development) इन दोनों

विषयों की तीव्र और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति किया है। वे लिखती है कि-

"तुम्हारी मर्ज़ी तुम पढ़ो न पढ़ो!
मिटा दो, या कर दो नष्ट पूरी स्लेट ही
पर याद रखो।
फिर कोई आएगा,
और लिखे-बोलेगा वही सब कुछ
जो कुछ देखे-सुनेगा
भोगेगा तुम्हारे बीच रहते
तुम्हारे पास शब्द हैं, तर्क हैं, बुद्धि है
पूरी की पूरी व्यवस्था है तुम्हारे हाथों
तुम सच को झुठला सकते हो बार-बार बोलकर
कर सकते हो ख़ारिज एक वाक्य में सब कुछ मेरा।"[9]

निर्मला पुतुल की कविता संथाल परगना में विकास का दिखावटी चेहरा उजागर हुआ है, जो आदिवासी समाज को उसकी संस्कृति, भाषा और भूमि से विस्थापित कर रहा है। यह कविता बताती है कि तथाकथित विकास असल में एक छलावा है- जो जीवन नहीं देता, बल्कि उसकी जड़ों को नष्ट करता है। यह स्वर विकास की उस प्रक्रिया पर सवाल उठाता है जो आदिवासी समाज को हाशिए पर धकेलती है।

आदिवासी स्त्री और पितृसत्ता

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री का संघर्ष दोहरी मार झेलता है - एक ओर वह आदिवासी समाज के भीतर पितृसत्ता से जूझती है, दूसरी ओर बाहरी समाज की उपेक्षा और शोषण का शिकार होती है। उनकी कविता "क्या तुम जानते हो" का सबसे केन्द्रीय और गहन हिस्सा है। इन पंक्तियों में कवयित्री ने स्त्री के भीतरी संसार, उसकी संवेदनशीलता, अनकही वेदना, और पुरुष-प्रधान दृष्टिकोण की सीमाओं पर तीखा प्रश्न उठाया है। वे लिखती हैं कि-

"क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण?
बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?
अगर नहीं!
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में...? "[10]

यहाँ कविता पितृसत्तात्मक दृष्टि के विरुद्ध स्त्री-अस्मिता की उद्घोषणा है। निर्मला पुतुल यहाँ न केवल सवाल करती हैं, बल्कि पाठक से आग्रह भी करती हैं कि वह स्त्री को उसकी सम्पूर्णता में, उसकी दृष्टि से, उसके अनुभवों के साथ समझे और आगे लिखती है कि तो तुम्हारा ज्ञान केवल स्त्री के शरीर और घरेलू भूमिका तक सीमित है। तुम स्त्री को एक 'काम करने वाली' या 'भोग की वस्तु' से आगे कभी देख ही नहीं पाए अपनी चिंता व्यक्त करती है।

भाषा और अभिव्यक्ति

निर्मला पुतुल की भाषा सहज, संवेदनशील और सशक्त है। वह अपनी कविताओं में लोक-जीवन की बिंबों, प्रतीकों और मुहावरों का प्रयोग करती हैं। उनकी कविताओं में संथाली संस्कृति की गंध है, जो हिन्दी कविता को एक नया आयाम देती है। निर्मला पुतुल की भाषा में स्त्री के मन की पीड़ा, संवेदना और आत्मसंघर्ष की अनुभूति गहराई से व्यक्त होती है। वह दर्द को सजाती नहीं, बल्कि उसे सीधा बोल देती हैं। इसलिए उनकी अभिव्यक्ति में एक ईमानदार सादगी और भीतर का ताप है। उन्होंने रूपक और प्रतीकों का प्रयोग भी किया है, जैसे-'तन का भूगोल'- शरीर और सीमाओं का प्रतीक,'मन की गाँठें'- मानसिक उलझनें और पीड़ाएँ,'खौलता इतिहास'- स्त्री के दमन और संघर्षों का रूपक,'रिश्तों का व्याकरण'- सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों की संरचना आदि का प्रयोग किया है। निर्मला पुतुल की भाषा में लोक की गंध, जीवन की सच्चाई और प्रतिरोध की गरमी है। उनकी अभिव्यक्ति में सजावट नहीं, बल्कि सीधापन, साहस और सत्य का ताप है। इसी सादगी में उनकी कविता का सौंदर्य और प्रभाव निहित है।

उपसंहार:

निर्मला पुतुल की कविताएँ हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। वे न केवल आदिवासी समाज की समस्याओं को उजागर करती हैं, बल्कि एक वैकल्पिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती हैं जो संघर्ष, चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता पर आधारित है। उनकी कविताएँ साहित्यिक सौंदर्य के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन का भी माध्यम बनती हैं। हिन्दी कविता में आदिवासियत को स्थापित करने में निर्मला पुतुल का योगदान ऐतिहासिक है। निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी जीवन की संवेदना, संघर्ष और अस्मिता की गहन अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके काव्य में आदिवासी समाज की मिट्टी की गंध, लोक-संस्कृति की आत्मा और विस्थापन की पीड़ा एक साथ उपस्थित हैं। वे उन आवाज़ों को शब्द देती हैं जो सदियों से हाशिये पर हैं। पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन केवल विषय नहीं, बल्कि प्रतिरोध और पहचान की चेतना है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से यह दिखाया है कि विकास के नाम पर आदिवासी समाज की ज़मीन, संस्कृति और अस्तित्व को कैसे छीन लिया गया है। उनकी रचनाएँ जैसे 'संथाल परगना', 'क्या तुम जानते

हो', 'बिना किसी लाग-लपेट के' आदि कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी जीवन केवल पिछड़ेपन का प्रतीक नहीं, बल्कि प्रकृति-संलग्न, संवेदनशील और आत्मसम्मान से भरा जीवन-दर्शन है। पुतुल ने अपनी कविताओं में स्त्री, समाज और प्रकृति के बीच गहरे संबंधों को उजागर किया है। उनका लेखन मुख्यधारा की दृष्टि से भिन्न, आदिवासी दृष्टिकोण से लिखा गया साक्ष्य है, जो सामाजिक असमानता, शोषण और सांस्कृतिक उपेक्षा के विरुद्ध एक सशक्त स्वर बनकर उभरता है। इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी जीवन की चेतना और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का सशक्त माध्यम हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

[1]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 72

[2]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 11

[3]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 30

[4]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 30

[5]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 73

[6]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 50

[7]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 26

[8]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 26

[9]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 94

[10]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण : 2005, पृष्ठ- 07